प्रवचन नं. ४४ गाथा-११ ता. २६-७-७८ बुधवार अषाढ वदी-७ सं.२५०४

समयसार (गाथा) ग्यारहवीं का भावार्थ, यहाँ से फिर से लें। प्राणियों को है? क्या कहते हैं, थोड़ा सूक्ष्म... यहाँ व्यवहार को झूठा कहा इसका अर्थ यह हुआ कि पर्याय इसमें नहीं, और द्रव्य को त्रिकालवस्तु को सत्य कहा एवं पर्याय को गौण करके झूठा कहा है। अब इसका प्रयोजन तो यह कि द्रव्य दृष्टि कराना पर्याय विद्यमान है, फिर भी अभेद को देखने में भेद दिखता नहीं, इसलिये उस भेद को गौण करके `नहीं' - ऐसा कहने में आया है।

अब यहाँ कहते हैं, प्राणियों को, है ? भेदरूप व्यवहार का पक्ष, अर्थात ? ***एक समय की जो अवस्था है और उसमें जो राग होता है, यह भेद का पक्ष है।*** समझ में आया ? यहाँ अभेद को मुख्य कहकर भेद को गौण करके `नहीं' कहा, इसमें प्रयोजन द्रव्य को सम्यग्दर्शन प्राप्त कराने के लिए, द्रव्य का आश्रय लेने पर वह प्रयोजन सिद्ध होता है। इसलिये इस द्रव्य को अभेद कहकर, पर्याय उसमें होने पर भी, भेद अवस्था होने पर, उसका लक्ष्य छुड़ाने, गौण करके नहीं कहने में आया है।

अब यहाँ... `प्राणियों को भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादिकाल से है' यह पर्याय रूप जो भेद है त्रिकाली का वर्तमान, इसकी बुद्धि अनादि काल से, पर्यायबुद्धि... भेदबुद्धि तो अनादी की ही है। समझ में आया ?

और सातमीं गाथा में - ऐसा कहा, कि भेद ऊपर लक्ष्य जायेगा तो तुझे राग होगा इसलिये अभेद अकेला ज्ञायक स्वभाव है, उसकी दृष्टि करने पर उसे सम्यग्दर्शनज्ञानादिक होंगे और भेद का लक्ष्य पर्याय का लक्ष्य करने जायेगा, तब रागी प्राणी है अतः भेद का लक्ष्य करने पर राग होगा। भेद का ज्ञान करने से राग होता हो तो केवली भी भेद अभेदवस्तु को बराबर जानते हैं। सूक्ष्म बात है। आहाहा !

केवलज्ञानी भी, त्रिकाली अभेद को भी जानते है और पर्याय को जो भेद यह भी केवली तो जानते हैं, भेद को जानने से राग होता हो तो केवली को राग होना चाहिए, परंतु यहाँ सरागी प्राणी है। साधक (दशा) में है उसे द्रव्यऊपर दृष्टि करनेपर, उसका प्रयोजन जो सुख और शांति है वह प्राप्त होता है, अतः भेद इसमें होनेपर भी, भेद को गौण करके `नहीं' कहा है। समझ में आया ?

और मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में सातवें अध्याय में आत्मा को भेदा-भेद कहा नहीं। उसे तो अभेद कहा है। यह पर से भिन्न है और अपने गुण-पर्याय से अभेद है

- ऐसा बताना है वहाँ। समझ में आया ? द्रव्य और पर्याय वस्तु में है। परंतु उसे मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में तो सातवें अध्याय में २५६ पेज के बाद २५७ पेज पर वस्तु को अभेद कहा। अभेद अर्थात ? यह वस्तु है आत्मा, उसके गुण और पर्याय सभी एकमेक पर से भिन्न है, और अपने स्वभाव से अभिन्न है। इस भाषा का प्रयोग किया है न ? अब ऐसी अपेक्षायें ?

कि वस्तु को...मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में - ऐसा कहें, टोडरमल्लजी... कि वस्तु है यह अभेद है। इसमें ज्ञान-दर्शन-चारित्र की पर्याय के भेद करना, यह भेद नहीं, इसे समझाने को भेद कहा है क्योंकि जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र से प्राप्त आत्मा हो, उसे (ज्ञान, दर्शन, चारित्र को) प्राप्त करे अतः उसे भेद से कथन (किया है), परंतु **वस्तु भेदरूप नहीं, वस्तु तो यह दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय सहित आत्मा अभेद है।**

जरा सूक्ष्म बात है भाई ! यह तो इन भेद के विचार आने पर क्या कहते हैं ? ***यहाँ कहते हैं कि प्राणियों को भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादिकाल से है, पर्याय ऊपर दृष्टि इसकी भेदरूप में तो अनादिकाल से है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? और मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में - ऐसा कहा कि वस्तु अभेद है पर्याय सहित वही वस्तु है, पर्याय भेद और द्रव्य अभेद - ऐसा है नहीं, वहाँ तो पर से भिन्न करके, उसके द्रव्य, गुण, पर्याय को अभेद कहकर वस्तु कहा है। और यहाँ जो है उसे गुण और पर्याय जो (भेद) है। यह त्रिकाली की अपेक्षा से, एक समय की पर्याय भेदरूप है।*** आहाहा !

त्रिकाल (वस्तु) है वह वस्तु अभेद है ध्रुव, और पर्याय है वह उसका भेद है और उस भेद का पक्ष तो अनादि का है प्राणियों को, आहाहा ! इसलिये यह पक्ष छुड़ाने (के लिए) वस्तु भेदरूप नहीं, अर्थात व्यवहार नहीं, पर्याय नहीं - ऐसा कहकर त्रिकाली आत्मा का आश्रय लेकर, सम्यग्दर्शन और सुख की प्राप्ति हो, इस प्रयोजन से व्यवहार और पर्याय जो भेद है, यह नहीं - ऐसा कहा है।

बहुत... कठिन बात भाई ! आहा ! और सातमीं गाथा में कहा कि भेद का लक्ष्य करेगा तो राग होगा। यहाँ भी भेद को गौण करके भेद को निकाल दिया। समझ में आया ? और सोलहवीं गाथा में भी दर्शन, ज्ञान, चारित्र की सेवा करना - ऐसा कहा। तब यह स्पष्ट किया कि लोग पर्याय से समझते हैं अतः इस विधि से समझाया है। बाकी दर्शन, ज्ञान, चारित्र का भेद, यह तो पर्याय नय और व्यवहारनय का विषय है। अरे...अरे...! समझ में आया ?

वहाँ पर्याय और उसकी अभेद वस्तु है यह अपने स्वभाव से अभिन्न है। एवं गुण पर्याय से भी अभिन्न है - ऐसा कहना है मोक्षमार्ग प्रकाशक में।

जो पर्याय को नहीं मानता उसे नहीं, परंतु मानता है वह पर्याय एवं द्रव्यगुण अभेद एकाकार है। इसलिये वस्तु अभेद है - ऐसा कहा। अरे ! और सातमी गाथा में वस्तु को अभेद कहकर गुण और पर्याय भेद है उसके ऊपर लक्ष्य जायेगा तो राग होगा, अतः जब तक सरागी प्राणी है, उसे अभेद की मुख्यता कराने, अभेद की दृष्टि एवं अभेद का आश्रय लेने (के लिए) भेद का लक्ष्य करने पर राग होता है अतः भेद का लक्ष्य छोड़ो। आहाहा !

और सोलहवीं गाथा में भी - ऐसा कहा, कि जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र है यह व्यवहारनय का विषय है एवं मलिन है यह मेचक है। सूक्ष्मबात है भाई ! यह तो थोड़ा भेद का पक्ष है, व्यवहार का पक्ष, यह पर्याय है। फिर भी इसका पक्ष है यह गलत है - ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया ? वस्तु है यह एकरूप अभेद है। उसमें जो पर्याय है यह भेद है। आहाहाहा ! है पर्याय उसकी, यह अवस्तु नहीं, है वस्तु परंतु... त्रिकालमें से पर्याय का अंश भेद है और भेद का लक्ष्य (करने से) रागी प्राणी है अतः राग उत्पन्न होता है, अतः भेद का लक्ष्य छुड़ाया है। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसे प्रकार है।

यह फिर से लिया, प्राणियों को... अर्थात बहुत जीवों को भेद अर्थात पर्याय का अर्थात व्यवहार का पक्ष तो अनादिकाल से है। समझ में आया ? ***मोक्षमार्ग (प्रकाशक) कहता है कि पर्याय अभेद है, भेद नहीं, यह पर से भिन्न करके अपने स्वभाव गुण पर्याय से अभिन्न है इतना वहाँ बताना है। समझ में आया ? और यहाँ (और) सातवीं गाथा में और सोलहवीं में इन तीनों का यह लक्ष्य है। कि पर्याय भेद है अवश्य जीव में, परंतु इस भेद को लक्ष्य करने जायेगा तो राग होगा और सुख का प्रयोजन है, सम्यग्दर्शन का प्रयोजन है, यह प्रयोजन पर्याय के लक्ष्य से सिद्ध नहीं होगा।*** आहाहा ! ऐसीं बातें है।

प्राणियों को भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादिकाल से ही है। यह पर्याय है यह भेद है। त्रिकाली द्रव्य की मुख्यता की अपेक्षा से पर्याय है वह गौण करके `नहीं' कहा, क्योंकि उसका पक्ष करता उसे राग होता है एवं अनादि का पक्ष है। पर्याय का, व्यवहार का पक्ष तो अनादिकाल से जीवों को है। समझ में आया ? यह छुड़ाने पर्याय को गौण करके नहीं, भेद कह कर नहीं - ऐसा कहने में आया है। आहाहा !

और इसका उपदेश भी बहुधा... है ? प्रथम तो इसे पर्याय (रूप) भेद का पक्ष तो अनादि का है और (ऐसे) उपदेशक भी इसे ऐसे मिलते हैं कि व्यवहार करना, पर्याय में व्रत करना, तपस्या करना, भक्ति करना। व्यवहार करके-करते कल्याण होगा-

ऐसा कहनेवाले अज्ञानी बहुत... है ? आहाहा ! उपदेश भी अधिक `भी' कहा न प्रथम तो भेद का पक्ष है और इसमें भेद का उपदेश देनेवाले भी हैं। आहाहा !

पर्याय के लक्ष्यसे उसे व्रत और तप तथा - ऐसा करो, लक्ष्य तो वहाँ दृष्टि है, यहाँ द्रव्य ऊपर तो दृष्टि है नहीं। - ऐसा उपदेश परस्पर एक दूसरे को करते हैं। उपदेश `भी' `भी' अर्थात दूसरा बोल... पहला बोल तो अनादि का है ही, उपरांत दूसरा बोल यह उपदेश भी बहुधा सर्व प्राणियों परस्पर करते हैं। आहाहा ! दो बोल !

`पुनश्च जिनवाणी में व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का हस्तावलम्ब जानकर बहुत किया है' जिनवाणी में भी देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति व्रत तप आदि के भाव बताये हैं, जिनवाणी में भी निश्चय वस्तु जहाँ है, आत्मा का आश्रय लेकर जहाँ सम्यग्दर्शन ज्ञान हुआ है, उसको राग की मंदता का भाव, चौथे, पांचमें और छठवें (गुणस्थान में) - ऐसा मंदता का भाव आये, आता है उसको उपदेश जिनवाणी में कहा है। कि देखो ! ऐस व्यवहार (साधकों को) होता है। उन्हें व्रत हो भक्ति हो उन्हें यह हो - ऐसा जिनवाणी में व्यवहार का उपदेश हस्तावलम्ब जानकर अर्थात निमित्तरूप जानकर निश्चयरूप स्वभाव के ज्ञान के समय में यह व्यवहार सहचर साथ में देखकर सहचर, साथमें देखकर निमित्तरूप जानकर, उसका उपदेश भी जिनवाणी ने दिया है। बहुधा उपदेश यही दिया है। आहाहा ! समझ में आया ?

दर्शन आचार, समकित का व्यवहार, ज्ञान का व्यवहार, आचार `निंदाग्रहा न करना' विनय करना, इत्यादि। आहाहा ! जिसके पास से सुना है उसे न छुपाना यह सभी व्यवहार। - ऐसा व्यवहार जिनवाणी में भी आया है। आहाहा ! `हस्तावलम्ब' अर्थात निमित्त, सहायक अर्थात साथ में रहनेवाला, निश्चय के साथ व्यवहार और राग की मंदता का भाव होता है। - ऐसा देखकर निमित्तरूप देखकर जिसकी स्वभाव के आश्रय की दृष्टि हुई, उसके साथ सहचररूप - ऐसा मंदराग होता है, इतना दिखाकर बताया है परंतु इसका फल संसार ही है। आहाहा ! तीनों... भेदों के पक्षवालों का फल संसार है, व्यवहार का उपदेश करते है एक दूसरे उसका फल संसार है, और जिनवाणी में कहा हुआ व्यवहार, उसका फल संसार है।

तब कहते है कि व्यवहार कहा क्यों ? कि निश्चय जो आत्मा आनंदस्वरूप का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि हुऐ हैं। उसकी पूर्णता न हो तब राग की मंदता सहचर साथ में होती है - ऐसा जानकर उसे भी व्यवहार कहा है। परंतु यह व्यवहार आदरणीय नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? व्यवहार है अवश्य - ऐसा जिनवाणी में कहा! आहाहा ! परंतु वह आदरणीय नहीं उसका फल संसार है। आहाहाहा !

(श्रोता :- करने लायक तो है) करने योग्य नहीं। यहाँ तो आता है सहचर

देखकर उपदेश किया है। करने लायक है ऐसी बुद्धि समकिति को होती नहीं। आ जाता है बीच में, सहचर साथ में आ जाता है, इसलिये इसका उपदेश किया है। परंतु है इसका फल संसार। आहाहा !

(श्रोता :- अनादि की है ?) अनादि की पर्यायबुद्धि है - ऐसा कहते हैं, और पर्याय बुद्धि का उपदेश, व्यवहार का परस्पर में करते हैं। व्रत करो, भक्ति करो, तप करो, दान करो तो इससे होगा- ऐसा उपदेश करते हैं। यह मिथ्यात्व का उपदेश (है) और जिनवाणी में भी, निश्चय के स्वरूप के ज्ञान के कालमें भी- ऐसा राग की मंदता का भाव आये बिना रहता नहीं, इसप्रकार बताया है। परंतु बताया है फिर भी उसका फल संसार है। आहाहा !

अब - ऐसा सभी समझना इसे। समझ में आया ? सातवीं गाथा में तो आ गया है अपना... शिष्य ने प्रश्न किया था... कि प्रभु यह आत्मा है, इसमें दर्शन-ज्ञान-चारित्र है यह तो इसकी पर्याय है उसकी वस्तु है, उसकी पर्याय है उसकी वस्तु है, उसे तुम व्यवहार क्यों कहते हो ? क्योंकि व्यवहार तो उसे कहते हैं, अवस्तु को। अवस्तु अर्थात ? कि उसमें न हो, पर हो उसे व्यवहार कहना ? और दर्शन-ज्ञान-चारित्र तो इसमें है। है तब तो वस्तु है। तब वस्तु है उसे व्यवहार क्यों कहा ? समझ में आया ? आहाहा ! - ऐसा मार्ग बहुत सूक्ष्म बापू ! आहा !

कि भाई ! हमने इसको व्यवहार कहा है, वस्तुतः तो उसकी पर्याय है। परंतु रागी प्राणी है इसलिये, जहाँ तक अभेदरूप पूर्णता को प्राप्त न हो, तब तक इसे राग के कारण, भेद ऊपर लक्ष्य जायेगा, तब राग होगा, बंधन होगा। आहाहाहा ! अतः उसे पर्याय के भेद का भी निषेध करके, अकेले आत्मा की दृष्टि करो - ऐसा बताया है। आहाहा ! अरे ! और सोलहवीं गाथा में भी कहा कि दर्शन-ज्ञान-चारित्र (का) सेवन करना, मूल गाथा में। तब यह तो पर्याय हुई भेद हुआ। कि भाई ! पर्यायरूप भेद कहा है उसका कारण ? कि लोगों को पर्याय से और व्यवहार से समझाना है इसलिये कहा है। बाकी पर्याय आदरणीय नहीं। भेद, एकद्रव्य का एक अंश जो वर्तमानदशा यह आदरणीय नहीं। आहाहा ! - ऐसा वस्तु का (सूक्ष्म स्वरूप) अब, समझ में आया ?

यही बात यहाँ ग्यारहवीं गाथा में ली है। ***ग्यारहवीं में सातवी में, सोलहवीं गाथा में जो कहा यह शैली, यहाँ ली है और मोक्षमार्ग प्रकाशक में तो परद्रव्य से भिन्न करके और उसका जो स्वभाव, गुण एवं पर्याय उससे वह अभिन्न वस्तु है, परंतु वस्तु तो अभेद है - ऐसा कहा और सातवीं गाथा में वस्तु भेदाभेद है - ऐसा कहा।*** (श्रोता :- इसमें से सच्चा क्या ?) दोनों। किस अपेक्षा से कहा है, कहा न ? ***कि***

भेदा-भेद है - ऐसा कहा है यह वस्तु का स्वरूप है, और वहाँ अभेद कहा है यह पर से भिन्न करके अपने में गुण पर्याय है, इतना बताने उसे अभिन्न कहा है। आहाहा ! समझ में आया ?

यह तो 'भेद का पक्ष' आया न उस पर से यह विचार बहुत आये। (श्रोता :- अच्छे विचार आये है) यह तो भेद का पक्ष हुआ न ? आहाहा ! प्रभु वीतराग का मार्ग - ऐसा कोई है यह, अभी तो बहुत बड़ा घोटाला उठा है। आहाहा ! सर्वज्ञका पंथ वीतरागता का सार है। तब वीतरागता हो कब ? भेद का पक्ष करे, लक्ष्य करे तब वीतरागता न हो, तब राग होता है। समझ में आया ?

पंचास्तिकाय की १७२वीं गाथा में आया है कि सभी शास्त्रो का तात्पर्य क्या ? कि तात्पर्य वीतरागता। चाहे तो चरणानुयोग हो कि करणानुयोग हो द्रव्यानुयोग हो कि कथानुयोग हो, इन चारों अनुयोगों का तात्पर्य तो वीतरागता है। यह वीतरागता तो पर्याय है। परंतु यह वीतरागता प्रगट कैसे हो ? इसका अर्थ हुआ कि वह द्रव्य का आश्रय ले तब वीतरागता प्रगट हो। पर्याय का आश्रय ले तो राग हो। वीतरागता प्रगट हो नहीं। आहाहाहा ! देवीलालजी ! यह तो तीन-चार बोल निकले इसमें से। आहाहा ! आहाहा !

जिनवाणी में भी व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का निमित्त देखकर हस्तावलम्ब का अर्थ निमित्त, सहचर, बहुत किया है। बहुत किया है व्यवहार का उपदेश शास्त्र में बहुत है। कारण कि लोग व्यवहार से समझते हैं और पर्याय दृष्टि से, पर्याय है उसे समझाते हैं। इसलिये लोक इस प्रकार समझते है और उपदेश - ऐसा बहुत किया है। परंतु यह बहुधा जिनवाणी में भी उपदेश किया जो व्यवहाररूप दर्शन के आठ अंग करना व्यवहार सम्यग्दर्शन के, ज्ञान के आठ आचार व्यवहार करना।

यह काल कहा था, प्रवचनसार में - ऐसा आया है कि हे दर्शनाचार व्यवहार तुम हमारा स्वरूप नहीं, चरणानुयोग की शैली में... वहाँ अधिकार है, चरणानुयोग (चूलिका) में प्रवचनसार... व्यवहार समकित के जो आठ अंग है निशंक-निकांक्ष आदि व्यवहार ज्ञान के आठ आचार है, उपधान ध्यान विनय से पढ़ना, अक्षर स्पष्ट लिखना, यह सभी व्यवहार से उपदेश किया है उसे - ऐसा कहते हैं कि प्रभु, तुम हमारी वस्तु नहीं। - ऐसा समकिति कहता है। तुम हमारी चीज नहीं। परंतु जब तक मैं पूर्ण न होऊं, तब तक तुम्हारे प्रसाद से अर्थात निमित्त की उपस्थिति में (हम) स्वयं से अपना काम कर लें। आहा..हा ! समझ में आया ? आहाहाहा !

वीतरागशास्त्र अलौकिक है। उसमें दिगम्बर संत, दिगम्बर मुनि और दिगम्बर धर्म यह तो सनातन अनादि मार्ग है। वीतराग का अनादि मार्ग यह है - ऐसा मार्ग अन्य

किसी संप्रदाय में कहीं है नहीं। आहा ! शैली तो देखो ! शैली। आहा ! जिनवाणी में व्यवहार का उपदेश किया है एवं यहाँ व्यवहार को असत् कहते हैं। व्यवहार झूठा है और जिनवाणी में व्यवहार आता है - ऐसा बताया है। उसका कारण...?

कि निश्चय रूप - आत्मा का अवलम्बन है, निश्चय से सम्यग्दर्शनज्ञान हुआ है। फिर भी पूर्णता नहीं अर्थात राग की मंदता सम्यग्दर्शन के आठ अंग आचार व्यवहार, ज्ञान के आठ आचार विनय आदि, चारित्र के आठ आचार पांच समिति गुप्ती वगैरह- ऐसा भाव वहाँ होता है। होता है - ऐसा जानकर, बताया है उसे जिनवाणी ने भी उसका फल बंधन और संसार है (बताया)। आहाहाहा !

वीतरागी मुनि है वीतरागी सम्यग्दृष्टि हैं, चौथे गुणस्थान में समकित वीतराग है। समकिती सरागी-फरागी होता नहीं। यह वीतरागस्वरूप भगवानआत्मा उसकी दृष्टि करने पर जो वीतरागी सम्यक्पना होता - ऐसे जीव को भी व्यवहार के आठ आचार आते है, ज्ञान के आते है। आहाहा ! यह भक्ति आदि का भाव होता है यह भगवान ने बताया, कि निश्चय के साथ यह होता है। परंतु इसका फल संसार है। आहाहा ! समझ में आया ? - ऐसा अटपटा है। आहाहा !

यहाँ व्यवहार को झूठा कहा और निश्चय को सच्चा कहा। निश्चय अर्थात त्रिकाली, भूतार्थ ध्रुव, वह सत्य है और पर्याय वह असत्य है - ऐसा कहा। इसका अर्थ पर्याय कहो कि व्यवहार कहो कि इसे गौण करके लक्ष्य छुड़ाने के लिए और मुख्य का लक्ष्य कराने के लिए वह त्रिकाली सत्यार्थ है, वह ही सत् है और वर्तमान में भेद है वह है अवश्य परंतु उसका लक्ष्य छुड़ाने, उसे गौण करके, अभेद की दृष्टि में यह भेद दिखता नहीं, अतः उसे झूठा कहा है। ऐसी बातें है। आहाहा !

जिनवाणी में व्यवहारनय का उपदेश... शुद्धनय के उपेदश में, शुद्धनय स्वभाव के साथ हस्तवलम्ब अर्थात हाथ को ज्यों सहारा मिलता यो जैसे छतपर चढ़ें तथा छत कहते हैं न ? यह लकड़ी किनारे पर होती है तब चढ़ता तो स्वयं अपने से, यह निमित्त होती लकड़ी होती है न ? लम्बा हाथ (रखने) को इसीप्रकार, हस्तावलम्ब हाथको जैसे यह निमित्त है, ऐसे यह व्यवहार को निमित्त कहकर निश्चय रूप स्वरूप की श्रद्धा और ज्ञान तथा शांति प्रगटी है, उसे पूर्णता नहीं, इसलिये बीच में - ऐसा व्यवहार आता है इसलिये जिनवाणी में व्यवहार का बहुत उपदेश किया है। उसका (व्यवहार का) उपदेश तो बहुत आता न, चरणानुयोग में आता है। आहाहाहा !

परंतु इस व्यवहार का फल, भेद के पक्षवाले जीव हैं अनादि से, उसका भी फल संसार और परस्पर यह व्यवहार का उपदेश करते हैं, उसका फल संसार तथा जिनवाणी में व्यवहार कहा उसका फल संसार। अरे ! ऐसी बातें हैं।

(श्रोता :- जिनवाणी का फल संसार होता ?) जिनवाणी (में) कहा न कि व्यवहार बीच में आता है अतः जिनवाणी में दर्शाया है, कि - ऐसा हो, वहाँ - ऐसा हो, वहाँ - ऐसा हो, दिखलाया है परंतु उसका फल बंधन है। आहाहा !

वस्तु भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनंद का धाम प्रभु, आनंद मंदिर भगवान ! आहाहा ! वह भजन में कहते पोपटभाई, गांधीको, कुछ आनंद मंदिर खोलो- ऐसा कुछ आता था न, पोपटभाई गाते थे, बाहर का नहीं परंतु यह आनंद मंदिर अंदर, भगवानआत्मा अतीन्द्रिय आनंद का सागर है। पूर्णानंद का नाथ प्रभु ! पूर्ण शक्ति स्वभाव से भरा प्रभु है। यह सर्वोत्कृष्ट प्रभु आत्मा है। यह आत्मा स्वयं भगवान है, परमेश्वर है, प्रभु है, ईश्वर है। आहा..!

यह वस्तु कृत्य-कृत्य है। आहा..हा ! वस्तु में कुछ करने जैसा नहीं यह तो वस्तु कृत्य-कृत्य है। आहाहाहा ! इसकी दृष्टि कराने, उसे मुख्यकरके निश्चय कहा और पर्याय को राग को गौण करके नहीं - ऐसा कहा है। अभाव करके `नहीं'... कहा है - ऐसा नहीं। यदि पर्याय ही न मानें तो वेदांतियों की तरह मिथ्यादृष्टि हो जाओगे और पर्याय से धर्म होता - ऐसा माने तो भी मिथ्यादृष्टि होगा। आहाहा ! - ऐसा मार्ग वीतराग का। है कि नहीं यहाँ ? हाँ। परंतु इसका फल संसार है। आहाहाहाहा !

तुमने पर्याय का और राग का पक्ष किया है अनादि से, यही संसार है। और पर्याय का और राग का उपदेश परस्पर करते हैं एक दूसरे को - ऐसा करो- ऐसा करो वैसे (अपने आप) कुछ होता होगा ? सम्यग्दर्शन निश्चय से एकदम होता है ? पहले यह कहीं व्यवहार साधन देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, पूजा आदि करें और यात्रा पूजा करते-करते शास्त्र बांचन खूब करो - ऐसा विकल्प आयें, इससे धीरे-धीरे लाभ होता - ऐसा जो उपदेश करते हैं, यह भी मिथ्यादृष्टि है। आहाहाहा !

और तीसरा (बोल) जिनवाणी में भी निमित्त देखकर... आहाहा ! निमित्त आदि का ज्ञान कराने... आहाहा ! यह वहाँ सातवें अध्याय में है न ? (मोक्षमार्ग प्रकाशक) ***में कि यह व्यवहार है उसे ग्रहण करना कहा है न ! व्यवहारनय को ग्रहण करना, यह व्रत ग्रहण करना अमुक ने कहा है न ? कि भाई ! ग्रहण करने का अर्थ उपादेय - ऐसा नहीं। ग्रहण करने का अर्थ जानना है।*** आहाहा ! टोडरमलजी ने लिखा है। समझ में आया ? व्यवहारनय से - ऐसा कहा कि व्रत करो एवं तप करो... भक्ति करो और... उपवास करो मंदिर बनाओ न... आहाहा ! पद्मनंदीपंचविंशतिका में - ऐसा कहा है, जो कोई प्रतिमा छोटीसी भी स्थापना करे... तो भी उसको आहाहा ! सिंघई की पदवी मिले, किस अपेक्षा ? बापू ! आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा !

वहाँ तो बताया है, कि समकिती है, आत्मज्ञान है, आत्मानुभव है उसे भी परमात्मा का... मंदिर बने वह मंदिर के कारण, प्रतिमा की स्थापना यह भी जड़ की पर्याय जड़ के कारण, परंतु इसे - ऐसा शुभ भाव आये बिना रहे नहीं। इतना शुभ भाव आया है उसे व्यवहार से निमित्त अपेक्षा से कहकर बताया है। परंतु यह शुभ व्यवहार आता है बीच में उसका फल संसार और बंधन है। अरे ! हाँ ! (श्रोता :- यह बात यही है) तब मोहनलालजी क्यों आये कलकत्ता से, यहाँ आते हैं। आहाहा !

बापू ! मार्ग बहुत अलग भाई ! आहा ! यह तो जन्म-मरण रहित होने की बातें है प्रभु ! आहाहा ! (श्रोता :- इसका फल संसार है - ऐसा कहने से भड़कते है) लिखा है न प्रभु, देखो न यहाँ का है, यह तो जयचन्द्रजी पण्डितजी का (लिखा हुआ भावार्थ है) (श्रोता :- यहाँ का है) आहाहा ! शांति से समझे तो... व्यवस्थित बैठे ऐसी बात है आहा...हा !

तब जिनवाणी में व्यवहार कहा क्यों ? कहा न यह निश्चय के साथ अपना आया है न मोक्षमार्ग प्रकाशक सातवें अध्याय में कि निश्चय समकित जिसे आत्मा का आश्रय हुआ उसे ही देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, सम्यग्दर्शन के आठ आचार, इन सभी को भी समकित कहा है, तब व्यवहार के साथ देखकर, है तो राग भाव, क्या कहा ? आत्मा जो वस्तु है चिदानंद पूर्णानंद प्रभु ! उसकी जिसे अंतर अभेददृष्टि हुई है, अनुभव हुआ है, यह सम्यग्दर्शन सत्य है और साथ में देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग व्यवहार समकित, जो रागादिक का आचरण, यह है तो राग, परंतु यह निश्चय समकित के साथ सहचर देखकर राग पर व्यवहार समकित का आरोप देकर व्यवहार समकित कहा है, यह `व्यवहार' समकित है ही नहीं। आहाहा ! सातवें अध्याय में आता है मोक्षमार्ग प्रकाश में कि निरूपण दो प्रकार है, वस्तु दो प्रकार की नहीं। आहाहा !

व्यवहार और निश्चय का निरूपण दो प्रकार (से) है। आहाहा ! वस्तु दो प्रकार की नहीं, वस्तु तो जो निश्चय के आश्रय से होती यह एक ही प्रकार है। आहाहाहा ! क्या शैली ? क्या शैली ? दिगम्बर संतो की क्या शैली ! गजब शैली ! संक्षिप्त शब्दों में भी गजब बातें है। ऐसी बात श्वेताम्बरों में नहीं एवं स्थानकवासियों में नहीं। अन्यमत में तो है ही कहाँ ? आहाहा !

वह भी... पक्ष में रुके है उन्हें खबर कहाँ है ? आहाहा ! संत कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य आदि, यह सर्वज्ञ के मार्ग पर चलनेवाले। आहाहा ! और कुन्दकुन्दाचार्य अमृतचन्द्राचार्य ने - ऐसा कहा पांचवी गाथा में, हमारे भगवान अरहंत प्रभु वह विज्ञानघन में निमग्न थे। प्रभु ! वीतराग ! उनके बाद गणधर, वह भी विज्ञानघन में निमग्न

थे। मग्न अकेले नहीं निमग्न। मग्न तो सम्यग्दृष्टि होते हैं परंतु यह संत हैं निमग्न है। फिर हमारे गुरुपर्यंत... हम छद्मस्थ हैं परंतु हम दृढ़ता से कहते हैं कि हमारे गुरुपर्यंत विज्ञानघन में निमग्न थे - ऐसा हम कहते हैं। आहाहाहा !

और उन्होंने हमको उपदेश दिया आत्मा का, महरबानी की। आहाहा ! उन्होंने हमें आत्मा का उपदेश दिया, उससे हमारा निज वैभव प्रगटा है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो निज वैभव आनंद (में) निमित्तरूप में यह था। किया है हम अपने से, परंतु इसमें निमित्त यह थे। और वह निमित्त हमारे गुरु भी विज्ञानघन में निमग्न थे। पंचमहाव्रत और नग्नपना है, यह कहीं मुनिपना नहीं। आहाहा ! छद्मस्थमुनि पंचमकाल के स्वयं के गुरु भी विज्ञानघन में निमग्न है - ऐसा निश्चय कर लिया ? (श्रोता :- स्वयं विज्ञानघन में निमग्न है) स्वयं है यह तो अलग बात है, यह तो हमारे गुरु भी, अरहंत भी, गणधर से लगाकर उनकी परंपरा तक हमारे गुरु पर्यंत विज्ञानघन में निमग्न थे। - ऐसा गुरु ने हमको आत्मा का उपदेश दिया है। आहाहाहा ! गजब बात करी है न ! कहाँ यह बात तो देखो !

और यह हमारा निज वैभव से हमें प्रगटा है। आहाहाहा ! हम प्रभु आत्मा आनंद स्वरूप हैं। हम पूर्ण ज्ञानस्वरूप हैं - ऐसा अपने द्रव्य का आश्रय लेने पर, हमको पर्याय में निज वैभव, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और अतीन्द्रिय प्रचुर आनंद का वेदन यह हमारा निज वैभव है। यह धूल का वैभव यह नहीं। अरे ! अंदर राग होता यह हमारा निज वैभव नहीं - ऐसा कहते हैं। टीका करने का विकल्प उठा है यह हमारा निज वैभव नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! वस्तु के सत्य की सिद्धि किस प्रकार की। आहाहाहा !

तीनों बोलों का फल संसार `ही' है - ऐसा कहा। एकांत कहा, कथंचित बंधन और कथंचित अबंध... व्रत, तप, भक्ति, पूजा के भाव आए तो कथंचित बंध का कारण एवं कथंचित अबंध का कारण - ऐसा नहीं कहा है - समकिती को भी, यह भाव आता है, यह बंध का कारण है अर्थात संसार है अभी। आहाहाहा ! अज्ञानी को तो... क्या कहना ? उसे तो निश्चय नहीं और व्यवहार भी नहीं।

जिसे निश्चय स्व का आश्रय हुआ है, उसे तो सहचररूप में व्यवहार के राग की मंदता... ज्ञानाचार दर्शनाचार, चारित्राचार, वीर्याचार वगैरह आता है। व्रत, नियम, तप, भक्ति भगवान का विनय आदि यह होता है, सहचर देखकर उसका ज्ञान कराया है भगवान ने भी, इसका ज्ञान कराया है, इसलिये उसका फल... यह वस्तु है उसका फल संसार है। आहाहा !

वस्तु स्वभाव है... अनंत आनंद ज्ञान और अनंत महिमावंत, अपरिमित शक्ति का

सागर प्रभु, महात्मा है, परमात्मा है प्रभु है, ईश्वर है - ऐसा जिसका द्रव्य स्वभाव है। आहाहा ! यही सत्य है - ऐसा कह कर, सम्यग्दर्शन कराने (को) उसे सत्य कहा है और पर्याय में मंदराग भाव और पर्याय होने पर भी, अरे ! ग्यारह अंग का ज्ञान होने पर भी... आहाहा ! उसे असत्य कह कर, गौण करके, गर्भित रखकर गौण करके `नहीं' - ऐसा कहा है। आहाहा ! समझ में आया ? कहो सुरेन्द्रजी ! कलकत्ता, फलकत्ता में मिले - ऐसा नहीं, वहाँ कहाँ। आहाहा !

वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा का विरह हुआ, परंतु उनकी वाणी रह गई, और संतो ने जगत को बतलाई। आहाहा ! प्रभु तुम प्रभु हो, इसतरह आचार्य प्रभु कह कर बुलाते है `भगवान हो' - ऐसा पुकारते हैं, बहत्तर गाथा समयसार में। `भगवानआत्मा' भगवान, संत `भगवान' कह कर बुलाते हैं प्रभु ! तुम भगवान हो न प्रभु ! तुम्हारी पर्याय में राग-द्वेष हो यह तुम्हारी चीज नहीं, उसी प्रकार तुम एक समय की पर्याय जितने नहीं। आहाहा ! - ऐसा जो भगवानआत्मा वही सत्य है एवं पर्याय और रागादिक, देव-गुरु की श्रद्धा का रागादि यह सभी असत्य है, इसप्रकार गौण करके असत्य कहा है। यहाँ कहा कि स्वयं सहचर देखकर जिनवाणी में कहा है। आहाहा ! समझ में आया ? लो, ऐसी बातें है यह। आहाहा !

अरे ! यह बात कहाँ है ऐसी बापा ! तीनलोक के स्वामी तीर्थंकरों द्वारा कहा हुआ, केवलज्ञान के पथानुगामी दिगम्बर संत अर्थात केवलज्ञान के पथ पर चलनेवाले, केवलज्ञान लेकर पता लगा लेंगे यह केवलज्ञान का। आहाहा ! पगदंड़ी होती है न ? पगदण्डी कहते हैं, हमारी (भाषा में) केड़ी कहते हैं। आहाहा ! यह - ऐसा कहते हैं, यह तो पण्डितजी ने स्पष्टीकरण किया है।

व्यवहार अभूतार्थ कहा और त्रिकाली को सत्य कहा, क्यों ? उसका स्पष्टीकरण करते हैं। अपने घर का कुछ कहते नहीं, अंदर है इसका स्पष्टीकरण करते हैं। आहाहा ! व्यवहार को असत्यार्थ क्यों कहा ? कि है तो अवश्य, पर्याय है, दया, दान का विकल्प भी है। कि यह पक्ष तो व्यवहार का अनादि से जगत को है और उपदेश भी बहुधा प्राणी यही करते हैं और जिनवाणी में भी निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञान की भूमिका में सहचररूप में ऐसी व्यवहार दशा होती है इसलिये उपदेश जिनवाणी में किया है। परंतु फल तो तीनों का संसार है। आहाहा !

- ऐसा है (श्रोता :- बहुत अच्छा) परसों चला था कल भी चला न आज भी फिर से आया यह। यह तो भेद पक्ष आया न ! एक तरफ पर्याय भेद (रूप) पक्ष है - ऐसा कहा- ऐसा यहाँ कहते हैं है तो अवश्य ! परंतु गौण करके उसे `नहीं' - ऐसा कहा, क्यों - ऐसा कहा ? कि भेद का पक्ष तो जगत को अनादि से है

और भेद की बातें करनेवाले भी परस्पर उपदेशक भी ऐसे जगत को मिलते है और सुननेवाले भी प्रसन्न होते हैं कि वाह ! यह...यह...यह करो। आहाहा ! यह सच्चा वह तो व्यवहार की बातें भी करते नहीं। अरे ! सोनगढ़िया तो... सोनगढ भी सोनगढ की कहाँ है यह बात ?

प्रभु ! तुम्हारे घर की बात है नाथ ! प्रभु ! तुम्हारा घर अंदर बड़ा है। आहाहा ! आहाहा ! हमारे मामा थे, दो सगे मामा छोटे थे, और हमारे मामा का काका का लड़का बड़ी उम्र का, न पैसावाले यह तो पैसावाले तो मामा थे, परंतु वह बहुत पैसावाले, कभी - ऐसा कहें तो कहें तो हमारी मामी - ऐसा कहें बड़े घर में पूँछो ? हमने कहा बड़ा घर अर्थात क्या ? वह हमारे बड़े मामा थे, बहुत पैसावाले थे मकान जमीन बहुत, सब समाप्त हो गया अभी मर गये लड़का भी न रहा, वैसे पैसावाले थे। कहते हमारी मामी कहती सगी मामी, बड़े घर में वहाँ मामा है, उनसे पूछो... वहाँ पूंछो बड़े घर है - ऐसा कहते।

इस प्रकार यह बड़ा घर भगवानआत्मा है। आहाहा ! छोटाभाई आया हो तो कहते है वहाँ बड़े घर में पूंछो इसप्रकार। यहाँ बड़ा घर तो तीनलोक के नाथ चैतन्य बिराजते है नाथ। आहाहा ! जिसमें अनंत अमृत भरा है, अनंत शांति भरी है। आहाहा ! अनंती स्वच्छता, अनंती ईश्वरता भरी है। आहाहा ! उसकी दृष्टि कराने, उसका आश्रय कराने, पर्याय को गौण करके यह `है' फिर भी `नहीं' - ऐसा कहा है और यह एक ही सत्यार्थ है - ऐसा कहा है। आहाहा ! समझ में आया कि नहीं ?

तुम नये हो अभी तो पहलीबार जल्दी आये हो, तुम्हारे लड़के की बात चलती है। (श्रोता :- यहाँ तो सभी नये है) है न भाई ! हमारे माणिकचन्दजी उनके नाना पहली बार आये है। आहाहा ! ऐसी बातें बापा ! यह तो तुम्हारे घर की बात है नाथ ! आहाहाहा !

तुम्हारे घर (से) बाहर का व्यवहार आये, जहाँ तक वीतराग नहीं इसलिए आये - ऐसा बताया भी है, वीतरागने, परंतु बापू ! यह व्यवहार का फल तो बंधन है। आहाहा ! समयसार नाटक में तो वहाँ तक कहा है। कलशमें से लेकर के मुनियों को तो अंदर में आनंद उछल गया है स्वसंवेदन का आनंद-आनंद, प्रचुर उछल गया है, आहाहा ! उसकी भूमिका में भी जो पंचमहाव्रतादिक के विकल्प आते है, यह जगपंथ संसार है। आहाहाहाहा !

जिसकी दृष्टि मिथ्या है और इसे जो राग की मंदता है, उसकी तो यहाँ बात है ही नहीं। आहाहा ! मिथ्या दृष्टिरूप रह कर कोई राग मंदता की क्रिया करे तो यह व्यवहार ही नहीं और निश्चय नहीं। दोनों झूठे गलत हैं। आहाहा !

परंतु भगवान जागा है अंदर से... अतीन्द्रिय आनंद का नाथ सावधान होकर जागती ज्योति जिसकी दृष्टि में अनुभव में आया है। आहाहा ! उसे भी जो राग मंदता की देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, पंचमहाव्रत के परिणाम, श्रावक के बारह व्रत के परिणाम आयें, परंतु इसका फल तो संसार है भाई ! आहाहाहा !

जितना स्वद्रव्य त्रिकाली भगवान, उसका आश्रय लेकर दशा प्रगटी, उतना मोक्षमार्ग है। आहाहाहा ! - ऐसा सत् है प्रभु !

अरे... परंतु टीका में व्यवहार को असत्य जो कहा, उसका स्पष्टीकरण किया है यह। कि क्यों असत्य कहा ? कि प्रथम तो जगत को पक्ष है और इसके उपदेशक भी ऐसे ही सभी हैं बहुधा, और जिनवाणी में भी व्यवहार का उपदेश बहुत आया है। यह तो आठवीं गाथा में कहा ना ? आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो वह आत्मा - ऐसा भेद करके कहा। परंतु भेद है नहीं उसके स्वरूप में। भेद करके कहा परंतु यह भेद अनुसरण करने लायक नहीं। पुनश्च वहाँ - ऐसा कहा। आहाहा ! समझ में आया ?

आहाहा ! यह अब सीधापनेकी (अस्ति की, शुद्धनय की) बात आती है। जो यहाँ त्रिकाली को भूतार्थ कहा और यही सत्य कहा और ही आश्रय करने लायक है। `यह शुद्धनय का पक्ष तो कभी आया नहीं' अनंतकाल हुआ मुनिव्रत धारण किया, `मुनिव्रत धार अनंतबार ग्रेवेयक उपजायो, पे निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायो' यह पंचमहाव्रत एवं अठाईस मूलगुण यह विकल्प यह दुःख है। आहाहा ! गजब बातें। यह कहते पंचमहाव्रत पालें तो धर्म होता है, यह यहाँ करते कि पंचमहाव्रत है वह विकल्प है राग है न ? जगपंथ है भाई ! तुम्हें खबर नहीं। आहाहा ! मुक्त स्वरूप तो भगवान आत्मा मुक्त स्वरूप है अबद्ध है। द्रव्य स्वभाव इसका अबद्ध है, मुक्त है। उसके आश्रय से (जो) परिणाम होते है वह मोक्षमार्ग है। आहाहाहाहा !

शुद्धनय का पक्ष तो कभी आया नहीं, पक्ष की व्याख्या ? कि मैं त्रिकाली शुद्ध हूँ - ऐसा लक्ष्य तो किसी दिन किया नहीं। आहाहा ! व्यवहार में ही रचा और पचा अनंतकालसे मिथ्यादृष्टिरूप रहा। आहाहा ! ***शुद्धनय का पक्ष, पक्ष अर्थात अकेला विकल्प नहीं हाँ यहाँ उसका अंदर आश्रय हो। कारण कि उसका फल मोक्ष कहेंगे न ? शुद्धनय का पक्ष जो है निश्चय नय का विकल्प और यह नहीं यह नहीं। यह अबद्धस्पृष्ट में आता है न ? यह नहीं, यह नहीं यहाँ तो निर्विकल्प पक्ष जो है वह यहाँ है - वह शुद्धनय का पक्ष है यह... आहाहा !***

यह तो कभी आया नहीं। राग रहित भगवान पूर्णानंद, प्रभु ! आहाहा ! यह शरीर और पैसा एवं मकान तथा महल, यह सभी हड्डी की फासफोरस है। आहाहा !

सुन्दर शरीर दिखे एवं कपड़े पहने हों और मुर्दा को श्रंगारे बापा ! यह तो राख है। आहाहा ! उसके बिना का अंदर अमृत का सागर भगवान ! आहाहा ! उसका पक्ष तो कभी आया नहीं। शरीर की क्रिया हमने ऐसी की न ! शरीर से हमने ब्रह्मचर्य पाला आजीवन और आजीवन बाल ब्रह्मचारी हम है न इससे कुछ भी न हो ? यह तो शुभभाव है। आहाहा ! - ऐसा मार्ग है।

शुद्धनय का पक्ष तो कभी आया नहीं, कभी एक समय भी, आहाहा ! अनादिसे एक समय (भी) आहाहा ! यह मुनिव्रत धारण किया, अट्ठाइस मूल गुण पाले। परिसह उपसर्ग बहुत सहन किये, परंतु यह सभी मिथ्यात्व है। आहाहा ! इसलिये कहा न ! कि `मुनिव्रत धार अनंतबार ग्रैवेयक उपजायो, पे निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायो' तब इसका अर्थ क्या हुआ ? पंचमहाव्रत, अट्ठाइस मूलगुण आजीवन बालब्रह्मचारी, हजारों रानियों का त्याग ! पंचमहाव्रत के परिणाम आदि बराबर निरातिचार निर्मल (होना) फिर भी यह दुःख (है), लेश सुख नहीं पाया, सुख (का) अंश भी न मिला। आहाहाहा !

जो यह शुद्धनय का पक्ष कभी आया नहीं और इसका उपदेश भी दुर्लभ है, कहीं कहीं इसका उपदेश है। आहाहा ! (श्रोता :- यह तो यहाँ सोनगढ़ में है अन्यत्र नहीं, अकेला सोनगढ़ में है !) हमारे मोहनलालजी कहते हैं न ! अभी कहा था कि यहाँ मिलता है। (श्रोता :- परिषह सहन करे और ज्ञान नहीं ?) वहाँ भान नहीं तब क्या ज्ञान है ? परिषह है ही कहाँ ? यह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा ! अरे बापू ! बहुत कठिन बातें।

उसका उपदेश भी `भी' क्यों कहा ? प्रथम तो शुद्ध का पक्ष आाय नहीं एक, और `भी' उसका उपदेश `भी' यह दूसरा बोल (श्रोता :- स्वयं को आया नहीं न) उपदेश भी मिला नहीं इसका उपदेश - ऐसा कहाँ है ? कहीं है ? आहाहा ! शेष तो व्यवहार व्यवहार आहाहा ! वहाँ धमाचौकड़ी चली थी न अभी कुरावड़ में चली थी न ! अभी पंचकल्याणक था न, हमारे झमकलालजी ! यह झमकलालजी का गांव बालब्रह्मचारी है। और वहाँ बहुत ध्यान रखते थे दस-पन्द्रह हजार व्यक्ति थे। दस हजार व्याख्यान में और नजदीक भिण्डर था वहाँ साधु थे, वहाँ बहुत आदमी परंतु लोगों ने यह सुनकर कितने तो, आहाहा ! कहते कि ऐसी बात तो हमने कहीं सुनी नहीं।

बापू ! यह मार्ग अलग बापू ! यह पक्ष नहीं भाई ! यह तो सत्य को बेल वोई (लगाई) है बापा ! विशेष कहेंगे... (प्रमाण वचन गुरुदेव !)